मृदंग की उत्पत्ति, विकास और स्वरूप

उत्पत्ति

भारतीय संगीत एवं अवनद्ध वाद्यों का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से प्रारम्भ होता है। मानव को सर्वप्रथम (स्वर ज्ञान की अपेक्षा) लय का ही ज्ञान हुआ था। प्रागैतिहासिक एवं वैदिक काल से ही चर्माच्छादित ताल वाद्यों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है किन्तु उन वाद्यों की बनावट तथा उनके वादन सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं है। शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त सबसे प्रथम अवनद्ध वाद्य के रूप में मृदंग का ही उल्लेख मिलता है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक किवदन्तियाँ प्रचलित है वस्तुतः देखा जाता है कि जब व्यक्ति किसी रहस्य या वस्तु के प्रति पूर्ण रूपेण अनभिज्ञ रहता है तो उसका सम्बन्ध वह किसी अदृश्य शक्ति या ईश्वर से जोड़ देता हैं इसी प्रकार का सम्बन्ध मृदंग की उत्पत्ति के सन्दर्भ में देखने को मिलता है–

"भगवान शंकर ने जब त्रिपुरासुर राक्षस का वध किया तो आनन्द के अतिरेक में वे नृत्य करने लगे किन्तु वह नृत्य लय में नहीं था, अतः इससे पृथ्वी डावाडोल होने लगी। जगतसृष्टा ब्रह्मा ने जब देखा कि पृथ्वी रसातल में जा रही है तो वे भयभीत हुए और प्रलय निवारण हेतु उन्होंने तुरन्त त्रिपुरासुर के शरीरावशेष से मृदंग की रचना करके विजयी शंकर के साथ ताल देने के लिए उनके पुत्र गणेश को प्रेरणा दी। गणपति जी के मृदंग वादन से प्रभावित होकर शंकर भगवान तालयुक्त नृत्य करने लगे और इस तरह मृदंग का उद्भव एवं ताल का प्रादुर्भाव होने के कारण पृथ्वी रसातल में जाने से बच गई।" इसी प्रकार पुष्कर वाद्य की उत्पत्ति के लिए भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र में भी एक वृतांत है जो इस प्रकार हैं–

"किसी अनध्याय के दिन जब आकाश में बादल छाए हए थे तभी स्वाति मुनि जल लाने के लिए एक सरोवर पर गए। जब सरोवर में जल लेने उतरे तो (इन्द्र ने पृथ्वी को एक बड़ा सागर बना डालने के लिए) जोरों से मूसलाधार वृष्टि आरम्भ की। तब उस सरोवर में वायु वेग से गिरने वाली मेघावृष्ट जल बूँदों के द्वारा (सरोवर के) कमलपत्रों पर जोरदार एवं मधुर ध्वनियों का (भिन्न-भिन्न) निर्माण होने

Scanned with CamScanner

लगा। तब मुनि ने सहसा इस अपूर्व ध्वनि को सुनते हुए (जो वर्षा की बूँदों से उद्भूत थी एक आश्चर्य मानकर) उस पर ध्यानपूर्वक विचार आरम्भ किया। पत्तों पर होने वाली उस सुन्दर और हृदयग्राही ध्वनि के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रकारों के विभाजन का गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए मुनि अपने आश्रम को लौट आए। आश्रम में लौटकर विश्वकर्मा की सहायता से मुनि ने मृदंगों का और फिर पुष्कर, पणव और दर्दुर वाद्यों का निर्माण कर डाला। फिर देवगणों के दंदुभी वाद्य को देखते हुए मुरज, आलिंग्य, आंकिक, उर्ध्वक जैसे वाद्यों का निर्माण किया।"

भरत मुनि के इस उपरोक्त वृतांत से यह बात तो साफ हो जाती है कि स्वाति मुनि ही मृदंग वाद्य के प्रणेता है तथापि उन्होंने स्वाति मुनि के समय काल के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है फिर भी मृदंग का उल्लेख पुराणकाल (ईसा पूर्व 1000 वर्ष) से बौद्धकाल, रामायण काल, महाभारत काल तथा भरत काल तक प्राप्त होने से सहज ही यह अनुमान लगाया जाता है कि स्वाति मुनि ने वैदिक काल या पौराणिक काल में मृदंग का निर्माण किया होगा।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पुष्कर शब्द का मुनि ने अलग-अलग अर्थों में उल्लेख किया है पुष्कर का मृदंग के रूप में पुष्कर का बाम पुष्कर एवं दक्षिण पुष्कर कहकर बाएँ तथा दाएँ मुख के रूप में एवं मर्दल-मुरज का भी पुष्कर के रूप में उल्लेख किया है। इस कारण वास्तव में पुष्कर वाद्य क्या था? यह स्पष्ट नहीं हो पाता तथापि त्रिपुष्कर के रूप में भरत ने जिन तीन अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है उससे उन तीन मृदंग प्रकारों जो भरत ने बनाए है—हरीतकी, यवाकृति, गोपुच्छाकृति का वर्णन प्राप्त होता है। यह तीन वाद्य आंकिक (हरीतकी), उर्ध्वक (यवाकृति) तथा आलिंग्य (गोपुच्छाकृति) थे। इन तीन अथवा इनमें से दो वाद्यों का वादन मार्जना के अनुसार एक साथ किया जाता था। इन त्रिपुष्कर वाद्यों का वर्णन इस प्रकार है—

(अ) **आंकिक**—यह वाद्य वर्तमान के मृदंग या पखावज के अनुसार होकर उसे भी लिटाकर बजाया जाता था। यह अधिकतर लकड़ी का बनाया जाता था। भरतकाल में मृदंग माटी के भी बने होते थे। इसकी लम्बाई 3½ बिलात होकर यह मध्य में अधिक चौड़ा रहता था। बीच में से खोखला होकर इसके दो मुख होते थे। दोनों मुखों का व्यास 12 अंगुल होता था।

दोनों मुखों पर चमड़े (पुड़ी) मढ़े रहते थे। यह चमड़ा गाय या बैल का दोषरहित सफेद चमकदार होता था। पूड़ी के चमड़ों में छेद करके डोरी या बद्धी को इनमें से डालकर दोनों पुड़ियों को कसा जाता था। बद्धी को दो के बाद तीसरी को बीच में से निकाला जाता था। डोरियाँ संख्या में 10 होती थीं। नए आंकिक वाद्य के पूड़ी (चमड़े) पर गाय के घी के साथ तिल को पीसकर मसाले का लेपन किया जाता था। आंकिक के दोनों मुखों पर आवश्यकतानुसार अलग-अलग स्वर स्थापना की जाती थी इसके साथ ही उर्ध्वक के ऊपर आंकिक के स्वर स्थापना के आधार पर ही स्वर स्थापना की जाती थी जिन्हें मार्जना कहते हैं।

Scanned with CamScanner

(ब) उर्ध्वक–यह वाद्य भी लकड़ी का बना होकर बीच में से खोखला होता था। इसके एक ही मुख होता था। इसको खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊँचाई 4 बिलात तथा मुख का व्यास 14 अंगुल होता था। वर्तमान बाएँ के अनुसार इसके मुख पर लगे चमड़े (पूड़ी) को डोरी से कस दिया जाता था। पुष्कर वाद्य के स्वर स्थापना में इसकी यह विशेषता होती थी कि इसे पंचम स्वर में मिलाया जाता था। अन्य बनावट चमड़ा, लेपन आदि आंकिक के अनुसार ही होती थी।

(स) आंलिग्य–यह वाद्य भी लकड़ी का बना होकर बीच में से खोखला होता था। इसके एक ही मुख होकर इसे खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊँचाई 3 बिलात तथा मुख का व्यास आठ अंगुल का होता था। इसके ऊपर चमड़े की पुड़ी लगाई जाती थी जिसे (बाएँ के अनुसार) डोरी से कस दिया जाता था। इस वाद्य को खर्ज स्वर में मिलाया जाता था। अन्य बनावट चमड़ा, डोरी, लकड़ी लेपन आदि आंकिक के समान ही होती थी।

त्रिपुष्कर वाद्य (आंकिक, उर्ध्वक, आंलिग्य) का जो उपरोक्त वर्णन दिया गया है भरतकालीन मृदंग का ही है क्योंकि आंकिक, उर्ध्वक तथा आंलिग्य मृदंग के ही अलग-अलग हिस्से है किन्तु मृदंग का वह हिस्सा (भाग) जो लेटा रहता था वो खड़े रहने वालों भागों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि मृदंग का आंकिक भाग ही प्रमुख था। आज वर्तमान में मृदंग का केवल एक भाग ही प्रमुख रूप से प्रचलित है जिसे कि लेटाकर दोनों ओर से वादन किया जाता है वह है भरतकालीन मृदंग का आंकिक भाग। जिसे आजकल उत्तर भारत में पखावज तथा दक्षिण भारत में 'मृदंगम' के नाम से संबोधित किया जाता है।

मृदंग (पखावज) की वादन शैली का विकास

यह बात तो सर्वसम्मति से लगभग निश्चित हो चुकी है कि मृदंग अत्यंत प्राचीन ताल वाद्य है किन्तु मध्ययुग में इस वाद्य का प्रचार-प्रसार वस्तुतः राणा मानसिंह तोमर के समय काल से प्रारम्भ हुआ जबकि ध्रुपद-धमार गायन शैली का प्रचलन था। अतएव यह कहा जा सकता है कि मध्ययुग में ध्रुपद-धमार गायन शैली मृदंग (पखावज) के विकास का प्रमुख कारण थी। यद्धपि पखावज की आधुनिक वादन शैली तथा घरानों का विकास 18 वीं शताब्दी के पश्चात् ही हुआ दिखाई देता है तथापि पखावज का प्रचलन मध्ययुग के प्रथम चरण में ही व्यापक रूप से जान पड़ता है। वस्तुतः ध्रुपद-धमार जैसी गंभीर गायकी के साथ संगत हेतु पखावज जैसा गंभीर गूँजयुक्त ताल वाद्य ही उपयुक्त था। प्रमाणिकता की पुष्टि इस तथ्य से स्वतः हो जाती है कि संगीत सम्राट तानसेन तथा स्वामी हरिदास जैसे प्रतिभावान गायक उस समय ध्रुप्रद-धमार ही गाते थे तथा उनके साथ पखावज पर ही संगति किए जाने का उल्लेख मिलता है।

'आनन्द भेरि मृदंग मिलि गायन गाए धमार'।

Scanned with CamScanner

ध्रुपद-धमार गायकी के साथ-साथ उस समय वीणा रबाब जैसे तन्तु वाद्यों के साथ पखावज पर ही संगत होती थी। परन्तु पखावज पर किस प्रकार के बोल बंदिशे बजती थी इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि उस समय मृदंग (पखावज) पर ताल परनों के बोल विद्यमान ही नहीं थे। वह तो परम्परागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को निरंतरता के रूप में प्राप्त होता ही रहा है किन्तु मृदंग (पखावज) का आधुनिक बोल साहित्य प्राचीन तथा मध्यकालीन बंदिशो पर ही आधारित है ऐसा निःसंकोच माना जा सकता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मृदंग (पखावज) का प्रचार-प्रसार (विकास) ध्रुपद धमार गायकी के साथ-साथ पला एवं फूला-फला परन्तु जब 13 वीं शताब्दी में भारत में यवन शासकों का पूर्ण रूप से अधिकार हो गया तो उससे भारतीय संगीत अप्रभावित न रह सका। फलतः यवन राज्यकाल में कई संगीत प्रेमी बादशाह हुए जिनसे ख्याल अंग की गायकी का जन्म हुआ। इस ख्याल अंग की गायकी के साथ संगत हेतु मृदंग (पखावज) जैसा गंभीर गूँजयुक्त ताल वाद्य उपयुक्त न था अतएव ख्याल अंग की गायकी के साथ संगत हेतु एक मधुर ताल वाद्य की आवश्यकता ने जन्म लिया और इस प्रकार तबला वाद्य की उत्पत्ति हुई। चूँकि मृदंग की संगति ध्रुपद-धमार जैसे गंभीर जोरदार गायकी के लिए उपयुक्त थी। धीरे-धीरे ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ने लगा और ध्रुपद-धमार गायकी का प्रचार कम होने लगा। उसी के साथ-साथ उसके जीवन साथी मृदंग का भी प्रचार कम होता गया। आज तो मुश्किल से ही कहीं ध्रुपद गायन सुनने को मिलता है परन्तु उसके साथ संगत हेतु पखावज के स्थान पर तबले पर संगति देखने को मिलती है।

Scanned with CamScanner